North Asian International Research Journal of Social Science & Humanities

ISSN: 2454-9827 Vol. 4, Issue-1 January-2018

IRJIF: 3.015

Index Copernicus Value: 57.07 UGC Journal No: 48727

किसानों की आर्थिक समस्या एवं उनके कारणों का विश्लेषणात्मक अध्ययन – मधुबनी जिला के संदर्भ में

सुनिल कुमार यादव

(शोधार्थी)

वाणिज्य एवं व्यवसाय प्रशासन विभाग

ल. ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

भूमिका

देश के ज्यादातर राज्य गंभीर कृषि संकट की गिरफ्त में हैं। किसानों का असंतोष व उसकी बेचैनी दिनोंदिन आक्रामक होता जा रहा है। मध्य प्रदेश के मंदसौर में जो कुछ हुआ, वह हमारे नीति–नियंताओं के लिए एक झकझोर देने वाला वाकया था। यह कोई छिपी हुई बात नहीं है कि किसानों को उनकी फसलों का सही मूल्य नहीं मिल पा रहा है। उनकी आमदनी नहीं बढ़ रही है। दालों और बागवानी उपज की बम्पर पैदावार से इनकी कीमतों में भारी गिरावट आई है और किसानों के हक में मूल्यों के स्थिरीकरण की दिशा में कोई संस्थानिक तंत्र काम नहीं कर रहा है। यह एक अजीब सी स्थिति है और साथ ही गंभीर चिंता का विषय भी कि एक तरफ से तो हम ऊंची विकास दर और प्रति व्यक्ति आय में पर्याप्त बढ़ोतरी की बात कर रहे हैं और दूसरी तरफ, कृषि क्षेत्र की हालत इतनी दयनीय है।

कर्ज–माफी का कदम इस संकट का सुविधाजनक सियासी समाधान बनकर उभरा है। पर यह न सिर्फ आधा–अधूरा है, बल्कि गलत भी है। इससे फौरी राहत भले मिल जाए, मगर कृषि क्षेत्र में व्याप्त संकट का दीर्धकालिक समाधान यह कतई नहीं है। आखिर साल 2008–09 में भी किसानों के कर्ज माफ हुए थे। इसके बावजूद हम अब भी एक बड़े संकट के बीच हैं। यदि हम किसानों की पूर्ण कर्ज–माफी के लिए अभी किसी तरह से संसाधन जुटा भी लें, तो इस बात की कोई गारंटी नहींकि कुछ वर्षों बाद हम फिर से उसी मुहाने पर नहीं खड़े होंगे। इसलिए कर्ज–माफी मर्ज की ठीक–ठीक पहचान किए बगैर दवा देने जैसी बात है। यह दर्द–निवारक दवा की तरह है, जो फौरी राहत देती है लेकिन जड़ से उपचार नहीं करती।

असली मसला यह है कि जब किसानों की उत्पादन लागत लगातार बढ़ रही है, तब तमाम रियायतों (सब्सिडी) के बावजूद वे अपने उत्पादन का वाजिब मूल्य हासिल नहीं कर पा रहे हैं। ऐसे में, जवाब कृषि बाजारों के सुधार में निहित है। सरकार के भीतर कृषि विभाग का मुख्य फोकस खेती–किसानी के इनपुट पर रहा है। हम मुख्य रूप से बीज, खाद, कीटनाशक व जल की उपलब्धता को संभालते रहे हैं। यह जरूरी भी है, जैसा की कहावत है– सब कुछ इंतजार कर सकता है, मगर खेती में

यदि चीजें वक्त पर नहीं हुई, तो फिर उसका कोई अर्थ नहीं रहता, यानी 'का वर्षा जब कृषि सुखाने?' वक्त पर बीज, खाद, कीटनाशक और पानी की जो यह जरूरत है, वह एक भारी कवायद की मांग करती है और दैनिक रूप से उसकी निगरानी करनी पड़ती है। हालांकि, तकनीकी तरक्की के कारण आज 'इनपुट मैनेजमेंट' बहुत ज्यादा मुश्किल नहीं रह गया है। असली मसला यह सुनिश्चित करना है कि किसानों को उनकी पैदावार के सही दाम मिले।

किसानों की आर्थिक समस्याएँ

कृषि क्षेत्र अच्छी स्थिति में नहीं है। फिर भी दो–तिहाई आबादी अपने जीविकोपार्जन के लिए कृषि और उससे जुड़ी गतिविधियों पर निर्भर है। इस तथ्य के मद्देनजर कृषि क्षेत्र की बदहाली आपराधिक लापरवाही ही लगती है। खैर, आजादी के बाद जिस कृषि क्षेत्र को कुल बजट का 12.5 प्रतिशत तक आवंटित किया जाता था, वह अब घटकर 3.7 प्रतिशत रह गया है, जबकी बढ़ती चुनौतियों के मद्देनजर इसके उलट होना चाहिए था। 24 फसलों में से महज दो फसलों गेहूं और धान का न्यूनतम समर्थन मूल्य तय करने पर सरकार का ध्यान रहता है। इतना ही नहीं न्यूनतम समर्थन मूल्य तय करने का तरीका भी विवादास्पद है। जाने–माने कृषि वैज्ञानिक डॉ. एम.एस.स्वामीनाथन की अध्यक्षता वाली आयोग ने लागत में 50 प्रतिशत मुनाफा जोड़कर न्यूनतम समर्थन मूल्य तय करने की सिफारिश की, लेकिन सरकार आज तक उस पर अमल करने को तैयार नहीं है। यह सच है कि कृषि क्षेत्र भारत में सबसे बड़ा नियोक्ता है। लेकिन कृषि को घाटे का सौदा बनाकर हम बेरोजगारी और असंतोष को बढ़ाने का काम ही कर रहे हैं। वहीं आज अधिकतर किसान कर्ज के बोझ में दबे है। जबकि कृषि एक ऐसा स्थल है जहां देश की सबसे अधिक आबादी सबसे कम आमदनी के साथ रहती है। देश की जीडीपी में कृषि का योगदान लगातार गिरता जा रहा है। इसका साफ मतलब है कि किसान अस्तित्व के संकट से जूझ रहे हैं। कृषि दिन–प्रतिदिन घाटे का सौदा होती जा रही है, इसलिए 60 प्रतिशत से अधिक किसान दो जून की रोटी के लिए मनरेगा पर निर्भर हैं। दूसरे शब्दों में जो लोग देश के लिए खाद्यान्न पैदा करते हैं वे खुद भूखे पेट सोने के लिए मजबूर हैं।

खेती–किसानी को तिलांजली देकर अपनी जमींन और घर–बार बेचकर शहरों में आए किसानों में से ज्यादातर को कोई हुनर न होने के कारण निर्माण क्षेत्र में मजदूरी या दिहाड़ी करनी पड़ती है। 2011 की जनगणना के अनुसार, हर रोज 2,500 किसान खेती को तिलांजली दे रहे हैं। कुछ अन्य अध्ययनों से पता चलता है कि हर दिन करीब 50 हजार लोग गांवों से शहरों की ओर कूच कर जाते हैं। इसमें मुख्य तौर पर किसान ही शामिल हैं। असल में आज खेती घाटे का सौदा बन चुकी है। एनएसएसओ के अनुसार, यदि विकल्प मिले तो 42 प्रतिशत किसान खेती–बाड़ी को हमेशा के लिए छोड़ देना चाहते हैं, लेकिन विकल्प न होने के कारण वे जमीन जोतने को मजबूर हैं। जो लोग कृषि छोड़ रहे हैं, अपना घर–बार छोड़ रहे हैं और बेहतर जीवन के लिए शहर जा रहे हैं। वहां वे भवन निर्माण, उद्योग आदिमें मजदूरी करने या फिर रिक्शा खींचने को मजबूर हैं। अर्थशास्त्री और नीति निर्माता इसे आर्थिक विकास का प्रतीक बताते हैं। बहरहाल, देश में आय के बढ़ते अंतर को समझने के लिए गांवों और खेती की दुर्दशा को जानना जरूरी है। गौरतलब है कि वर्ष 2005–09 के दौरान जब देश की आर्थिक विकास दर 8–9 फीसदी की दर से कुलांचें मार रही थीं तब भी 1.4 करोड़ किसानों ने खेती छोड़ी। इसका अर्थ यही हुआ कि

आर्थिक विकास का फायदा किसानों को नहीं मिला और न ही वहां रहने वाली आबादी की आमदनी में उल्लेखनीय इजाफा हुआ। अगर आर्थिक विकास का लाभ गांवों तक पहुंचता तो किसान अपना घर–बार छोड़ कर शहरों की तरफ पलायन नहीं करते।

खेती के प्रति बढ़ते मोहभंग की कुछ साफ वजहें हैं। सरकारी नीतियां कृषि और किसान विरोधी है। खाद, बीज, डीजल और महंगे मजदूरों के चलते खेती करना आज घाटे का व्यवसाय बन गया है। खेती में लागत बढ़ गई है, जबकि कृषि उत्पादों की खरीद में सारा लाभ बिचौलिये हड़प लेते हैं। दूसरी ओर सबसे बड़ी परेशानी सरकार द्वारा दी गई सुविधा किसान तक नहीं पहुंच पाती है। अगर पहुंचती भी है तो संपन्न किसानों के पास ही पहुंचती है। वहीं दूसरी ओर देश में ज्यादातर किसानों की आय राष्ट्रीय औसत आय से कम है। उन्हें न तो अपनी उपज का सही मूल्य मिल पाता है और न ही कृषि को लेकर मौजूदा सरकारी नीति से उन्हें लाभ पहुंचता है। वे कम उत्पादन करने पर भी मरते हैं और अधिक उत्पादन करने पर भी। दरअसल, हमने कृषि और किसानों को उतनी तरजीह नहीं दी जितनी देनी चाहिए थी। अक्सर मानसून को दोष देकर हम अपनी कमियां छुपाते रहे। साथ ही सरकार ने आर्थिक सुधारों को लागू करने के चक्कर में खेती और किसानों पर सही ध्यान नहीं दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि किसान और ज्यादा गरीब होते जा रहे हैं।

आज भले ही हम दावा करें की हमारा देश विकसित देश की श्रेणी में आने वाला है, लेकिन जमींनी हकीकत यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में लोग खेती–किसानी का काम कर्ज की मदद से ही कर रहे हैं। जीडीपी में कृषि का योगदान निरंतर कम होता जा रहा है। इसलिए कृषि की हालत में सुधार के बिना न तो देश की हालत में सुधार संभव है और न ही किसानों की स्थिति में सुधार हो सकती है। किसानों के लिए खेती जीवन मरण का प्रश्न है। बावजूद इसके सरकार को जितना कृषि पर ध्यान देना चाहिए उतना नहीं दिया। सरकार की गलत नीतियों के कारण सिंचाई, लधु उद्योग, दस्तकारी व ग्रामीण जीवन प्रभावित हो रहा है जिस कारण देश का किसान बदहाल है आज कृषि के आधुनिकीकरण की जरूरत है और इसके लिए पूंजी निवेश आवश्यक है। सिंचाई के साधन विकसित करने पर जोर देना होगा। आज हालत यह है कि किसानों को उनकी लागत ही नहीं मिलती। किसान खेती के लिए कर्ज लेता है। कभी अतिवृष्टि तो कभी अकाल की वजह से फसल चौपट हो जाती है। मौसम साथ दे और अच्छी फसल हो तो किसान को उपज का उचित मूल्य नहीं मिलता ऐसे में किसान कर्जदार तो होंगे ही। ऐसे में किसान आत्महत्या तक कर लेते हैं।

किसानों की आर्थिक बदहाली के कारण

बिहार राज्य के किसानों की स्थिति बेहद ही चिंताजनक है। राज्य के कुल भूमि का क्षत्रेफल एक खण्ड में नहीं होकर अनेक खण्डों में विभक्त है और ये खण्ड एक–दूसरे से बहुत दूरी पर स्थित होते है। प्रत्येक भू–खण्ड पर ज्यादा क्षेत्रफल मेंड़, नालियों, भवन, सड़क आदि बनाने में व्यर्थ जाता है। छोटे भू–खण्डों पर सिंचाई की सुविधा उपलब्ध नहीं हो पाती है। चकबंदी के प्रयास से कुछ जोतों के बिखरें हुए खण्डों को एक खण्ड में लाई गई।

कृषि जनगणना 1970–71 एवं 1990–91 के अनुसार कार्यशील जोतों की संख्या क्रमशः 7,567 से बढ़कर 11,711 हो गई। बिहार चकबंदी अधिनियम, 1956 के लागू होने के बावजूद भी 1971–1990 में सीमांत कृषक के भूमि का क्षेत्रफल 16 प्रतिशत से बढ़कर 30.3 प्रतिशत हो गया जबकि इस अवधि में सीमांत कृषक की संख्या 64.3 प्रतिशत से बढ़कर 76.65 प्रतिशत हो गई है जो कि भूमि सुधार की विफलता को दर्शाता है। भूमि का आकार छोटा होने के कारण आधुनिक कृषि पद्धति को लागू करना कठिन होता है। बिहार में कृषि क्षेत्र में पूंजी निवेश कम है। बिहार में भूमिहीन या निर्धन कृषकों की संख्या ज्यादा है जिसके कारण कृषि व्यवसाय में पूंजी निवेश कम मात्रा में कर पाते हैं। पूंजी के अभाव में कृषक कृषि उत्पादन में उन्नत तकनीकी विधियों एवं प्रस्तावित मात्रा में उत्पादन संसाधनों का उपयोग करपाने में सक्षम नहीं होते हैं। कृषि की तकनीकी ज्ञान के स्तर का कम उपयोग करने के कारण कृषि व्यवसाय से कुल लाभ एवं बचत की राशि कम प्राप्त होती है। कृषि में पूंजी निवेश की राशि एवं भूमि की उत्पादकता में धनात्मक संबंध होता है। राज्य में कृषकगण गैर खाद्यान्नों, वाणिज्यिक एवं नकदी फसलों को उतना महत्व नहीं देते जितना खाद्यान्नों के उत्पादन को देते हैं। इसका कारण वाणिज्यिक फसलों के उत्पादन की विधि एवं उनसे प्राप्त होने वाले लाभ की अज्ञानता का होना है। खाद्यान्न फसलों का अधिक क्षेत्रफल में कृषि करने से कृषकों को प्रति हेक्टयर भूमि के क्षेत्र एवं कुल फार्म क्षेत्र से लाभ कम प्राप्त होता है।

बिहार की कुल श्रमशक्ति का 91 प्रतिशत असंगठित क्षेत्र में कार्यरत है एवं मात्र 9 प्रतिशत संगठित क्षेत्र में कार्यरत है। राज्य में करीब 87 प्रतिशत लोग गांवों में निवास करते हैं और कुल श्रमशक्ति का 76 प्रतिशत कृषि कार्य से जुड़ा है। कृषि क्षेत्र पर अधिक जनसंख्या के आश्रित होने से भूमि पर जनसंख्या का भार अधिक होता है और प्रति व्यक्ति उपलब्ध कृषि क्षेत्र कम होता जा रहा है। इतना ही नहीं, राज्य में कृषि उत्पादन आज भी प्राकृति की अनुकूलता पर निर्भर है। प्रकृति की प्रतिकूल अवस्था वाले वर्ष में खाद्यान्नों का उत्पादन कम होता है। प्रकृति पर निर्भरता का अर्थ है राज्य में सिंचाई हेतु पानी उपलब्ध नहीं होना। बिहार में कृषि कार्य जैसे– जुताई, बुआई, सिंचाई, खाद डालना, कटाई, ढुलाई आदि पशुओं की सहायता से ही किए जाते हैं। पशु–शक्ति के अधिक उपयोग के कारण उत्पादन लागत अधिक आती है। भू–धृति की दोषयुक्त पद्धति प्रचलित होने के कारण कृषक भूमि से उत्पादकता बढ़ाने में इच्छुक नहीं होते हैं। इन दोषयुक्त पद्धतियों में कृषक एवं सरकार के मध्य मध्यस्थों का होना, जोत अपखण्डन, जोत का क्षेत्रफल कम व असमान होना, भू–राजस्व की राशि अधिक वसूल करना आदि प्रमुख हैं। सरकार ने भू–धृति की दोषयुक्त पद्धतियों की समाप्तियों के लिए अनेक भूमि–सुधार कार्यक्रम अपनाए हैं किन्तु बिहार में यह कार्यक्रम सफल नहीं हो पाया है।

कृषि विकास में प्रथम बाधक तत्त्व भूमि की उर्वरा–शक्ति निरंतर ह्रास होना है। हवा एवं पानी से भूमि के कटाव, भूमि पर निरंतर पानी भरा रहना, उचित फसल–चक्र का अभाव आदि भूमि की उर्वरा–शक्ति के ह्रास में वृद्धि करते हैं।

देश में प्रचलित उत्तराधिकार कानून के कारण जोत का उप–विभाजन एवं अपखण्डन होना मुख्य समस्या है। इस समस्या के कारण जोत निरंतर कम होता जाता है एवं भूमि के खण्ड एक–दूसरे से दूर हो जाते हैं और इस प्रकार के जोत आर्थिक दृष्टि से लाभकर नहीं होता है। देश में जागीरदारी, जमींदारी, पट्टेदारी, बटाईदारी, अनुपस्थित जमींदारी आदि अनेक प्रकार की

भू–धृति कुरीतियां शताब्दियों से प्रचलित है। इसके कारण भूमि स्वामी वास्तविक कृषक न होकर जमींदार होते हैं जिसके कारण कृषकों में उत्पादन–वृद्धि की प्रेरणा का ह्रास होता है। बिहार में जोतों का औसत आकार बहुत छोटा (0.93 हेक्टेयर) है जो देश के अन्य राज्यों से सबसे छोटा है। बिहार राज्य का लगभग 3/4 जोत 1.0 हेक्टेयर से कम का है और इस कोटी में आने वाले जोतों का औसत आकार 0.37 हेक्टेयर है। जोत का आकार कम होने से जोत आर्थिक दृष्टि से लाभकर नहीं होते हैं। प्रति इकाई क्षेत्र से कम उत्पादन प्राप्त होता है एवं उत्पादन लागत अधिक होती है। मौसम के प्रारंभ (फसल की बुआई) व अंत (फसल की कटाई) में कार्य की अधिकता होने के कारण कृषि श्रमिकों की मांग अधिक होती है। वर्ष के अन्य समय में कार्य उपलब्ध नहीं होने से कृषि श्रमिक बेकार रहते हैं, औसतन 5–6 माह कृषि श्रमिकों को रोजगार उपलब्ध होता है और शेष 6 माह वे बेकार रहते हैं। कृषि श्रमिकों को उपलब्ध कार्य की मजदूरी अन्य उद्योगों की अपेक्षा कम मिलती है। इसका मुख्य कारण कृषि क्षेत्र में कार्य कर रहे श्रमिकों का असंगठित होना, कृषि–श्रमिकों की मांग व पूर्ति में असंतुलन एवं श्रमिकों द्वारा कृषि व्यवसाय को उत्तम व्यवसाय मानना है। कम मजदूरी प्राप्त होने के कारण जीवन–स्तर निम्न होता है जिससे उसकी कार्य क्षमता पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है।

कृषि व्यवसाय में अन्य उद्योगों की अपेक्षा कुंआ बनाने, सिंचाई की नालियां बनाने, खेत का बाड़ लगाने, ट्रैक्टर एवं अन्य मशीनें खरीदने आदि कार्यों के लिए अधिक स्थाई पूंजी की आवश्यकता होती है। कृषि कार्य में बचत कम होने के कारण कृषक आवश्यक मात्रा में स्थायी पूंजी निवेश नहीं कर पाते हैं। कृषि व्यवसाय में उत्पादन साधनों– बीज, खाद, उर्वरक,कीटनाशक दवाईयों के क्रस करने, श्रमिकों को मजदूरी का भुगतान करने, बिजली व तेल के भुगतान आदि कार्यों के लिए कार्यशील पूंजी की अधिक आवश्यकता होती है। लधु कृषक आवश्यक प्रतिभूति के अभाव में कार्यशील पूंजी ऋण के रूप में प्राप्त नहीं कर पाते हैं जिससे उचित मात्रा में उत्पादन–साधनों का उपयोग नहीं हो पाता है और उत्पादन कम होता है।

बिहार में कृषि उत्पादन की पुरानी तकनीक आज भी प्रचलित है। बिहार के कृषक उत्पादन की पुरानी तकनीक लकड़ी का हल व खुरपी से ही काम ले रहे हैं। पंजाब व हरियाणा मेंइस्पात का हल, ट्रैक्टर, थ्रेसिंग मशीन, पानी के लिए डीजल पंप आदि अधिकांश कृषकों को उपलब्ध है। इस कारण बिहार की कृषि उत्पादकता अन्य राज्यों की तुलना में कम है। राज्य में कृषि विकास के मामले में अपर्याप्त सुविधा बहुत ही बड़ा बाधक तत्त्व है। बिहार में 1993–94 तक सिंचाई क्षेत्र 42.12 लाख हेक्टेयर थी जो क्षमता के अनुपात में 52.30 प्रतिशत थी किंतु राज्य में कुल सिंचाई क्षेत्र 43.0 प्रतिशत से अधिक नहीं हो पाई जबकि पंजाब में सिंचाई क्षेत्र 95.0 प्रतिशत और हरियाणा में 78.0 प्रतिशत है। सिंचाई का अधिकतम लाभ बड़े या फिर मंझोले किसान ही उठा पाते हैं। छोटे या सीमांत किसान सिंचाई की क्षमता का लाभ आंशिक रूप से ही उठा पाते हैं। वस्तुतः सिंचाई के विकास की जो भी रणनीतियां या कार्यक्रम बनाए गए वह केवल सिंचाई के क्षमता को बढ़ाने की कोशिश की गई है। कई सिंचाई परियोजनाएं जो प्रथम एवं द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं में शुरू की गई थी उसका सही कार्यान्वयन आज तक नहीं हो पाया है। लधु सिंचाई योजनाओं की भी कमोबेश दोषपूर्ण व्यवस्था रही है।

उचित जल प्रबंधन के द्वारा कृषि योग्य बंजर भूमि, चौर, मान्स एवं टाल भूमि के एक बहुत बड़े अनुपात (कुल भूमि का 20–25 प्रतिशत) की उत्पादन क्षमता को बढ़ाया जा सकता है। इन क्षेत्रों को योग्य बनाने हेतु एवं इसकी उत्पादन क्षमता के समुचित उपयोग के लिए तकनीक एवं निजी पूंजी निवेश के आधार पर रणनीति बनाई जा सकती है। बिहार में हरित क्रांति का प्रभाव नगण्य होने के कारण कृषि उत्पादन कम ही रहा। अच्छे बीजों व रासायनिक खादों के उचित प्रयोग का प्रचलन विभिन्न जिलों में समान रूप से नहीं पाया जाता है। कृषि की निम्न उत्पादकता का एक कारण फसलों को कीड़े–मकोड़ों व रोगों से सुरक्षा न कर पाना भी है।

बिहार में कृषि विपणन व्यवस्था में उत्पादक कृषकों को उपभोक्ता द्वारा दिए गए उत्पादन के मूल्यों में से बहुत कम अंश प्राप्त होता है। उपभोक्ता द्वारा दी गई कीमत में से अधिकांश भाग विपणन–मध्यस्थों को प्राप्त होता है। फल–सब्जी, दूध आदि शीघ्रनाशी वस्तुओं के उत्पादक कृषकों को उपभोक्ता द्वारा दी गई कीमत में से आधे से भी कम भाग प्राप्त होता है। कृषकों को उपभोक्ता के रूपये में से कम भाग प्राप्त होने का प्रमुख कारण है बिहार में कृषि विपणन व्यवस्था का दोषयुक्त होना। वर्त्तमान कृषि–विपणन व्यवस्था में पाये जाने वाले प्रमुख दोष कृषकों द्वारा उपज का अधिकांश भाग गांवों में विक्रय करना, फसल कटाई के शीघ्र बाद कृषि उत्पादों की अधिकांश मात्रा विक्रय करना, मंडी में ठहरने की असुविधा, मध्यस्थों की अधिकता, पूंजी की कमी, संग्रहण के लिए स्थानों एवं सुविधाओं का अभाव, विपणन लागत की अधिकता श्रेणीकरण एवं मानकीकरण सुविधा का उपलब्ध न होना, कृषकों में संगठन का अभाव आदि है।

लागत खर्च बढ़ने से देश के किसानों की स्थिति दिन व दिन बदतर होती जा रही है यहां तक की उन्हें अपनी फसल का उचित मूल्य भी नहीं मिल पा रहा है। यही वजह है कि अब किसानों के लिए खेती लाभप्रद व्यवस्था नहीं रह गई है और खेती से मोहभंग के कारण वे लगातार रोजगार के वैकल्पिक उपयों को अपना रहे हैं **(रविशंकर,2014)।** इतना ही नहीं, कभी बेमौसम वारिश तो कभी सूखा जैसी प्राकृतिक स्थिति किसानों की कमर तोड़ देती है। कभी गेहूं के महीन और सिकुड़े दाने उनके सामने नया संकट पैदा कर देती है। साल–दर–साल की बाढ़ की बेहाली तो वे झेलते ही हैं। सिंचाई का नियमित साधन का न होना तथा फसलों के लिए बाजार की अनुपलब्धता उन्हें आर्थिक तंगहाली की स्थिति में ला देता है। बिचौलियों की मार तो वे सहते ही हैं। जानकारी के अभाव में किसान फसल क्षति बीमा योजना से वंचित रह जाते हैं। किसान क्रेडिट कार्ड के माध्यम से खेती के लिए दी जाने वाली ऋण की राशि को अपनी आमदनी समझकर बैंक में पैसा जमा नहीं करते हैं।[10]प्रसार सेवाओं के व्यापक प्रचार–प्रसार न होना उन्हें अर्थिक विपन्नता की ओर ले जाता है। कुल मिलाकर, किसान के नसीब में बदहाली ही बढ़ा है।

निष्कर्ष

अनिश्चितताओं से भरे कृषि कार्य और ग्रामीण क्रियाकलापों के प्रति ग्रामीणों में अरूचि पैदा हुई है। उनमें यह धारणा बैठ गया है कि खेती अब लाभ का क्षेत्र नहीं रह गया या गांवों में उनकी जीविका नहीं चल सकती। हमें अपनी कुशल प्रबंधकीय क्षमता

का परिचय देते हुए ऐसी नीति बनानी होगी जिससे कृषकों के अंदर बैठी इस गलत धारणा को खत्म किया जा सके। कृषि क्षेत्र को केवल जीविकोपार्जन का साधन मात्र नहीं रखकर इसे एक संगठित क्षेत्र के रोजगारोन्मुख व्यवसाय के दर्जे के रूप में प्रतिष्ठित कराने के लिए जोर लगाना होगा। लोगों में व्याप्त अज्ञानता को दूर करने के लिए व्यापक मीडिया का प्रयोग कर जन जागरूकता कार्यों को चलाने की जरूरत है। कृषि क्षेत्र में व्याप्त प्रच्छन्न बेरोजगारी को सहयोगी कार्यों से जोड़कर पूर्ण रोजगार में तब्दील किया जा सकता है। इसके लिए पशुपालन, मत्स्यपालन, बागवानी आदि व्यवसायों के लिए सरकारी प्रयासों के साथ आम लोगों को भी अपनी क्षमता को भरपूर उपयोग करने की जरूरत है। निःसंदेह कृषि क्षेत्र और साथ ही साथ ग्रामीण हस्तशिल्प, देशी उत्पाद आदि अपार संभावनाओं से भरे पड़े हैं। बस जरूरत है उपलब्ध सीमित संसाधनों का कुशल प्रबंधकीय क्षमताओं के साथ उपयोग करने की।

संदर्भ :

1. रंजन, आलोक (2017), किसानी को चाहिए साहसिक सुधार, हिन्दुस्तान, मुजफ्फरपुर संस्करण, 11 अगस्त, पृष्ठ 10
2. सपरिया, राजेश (2010), खेती इंतजार नहीं करती, योजना, वर्ष 54, अंक 3, मार्च, पृष्ठ 16
3. राय, अमरेन्द्र कुमार (2010), किसानों का बजट, योजना, वर्ष 54, अंक 3, मार्च, पृष्ठ 21
4. गांधी, वरूण (2015), कृषि को लाभकारी बनाने के लिए, हिन्दुस्तान, मुजफ्फरपुर संस्करण, 13 जनवरी, पृष्ठ 12
5. शंकर, रवि (2014), संकट में खेती–किसानी, योजना, वर्ष 58, अंक 6, जून, पृष्ठ 45–46
6. एनएसएसओ की वेबसाइट
7. कुमार, सौरभ (2013), ग्रामीण ऋण व्यवस्था के लिए समग्र वित्तीय समावेशन, कुरूक्षेत्र, वर्ष 60, अंक 2, दिसम्बर, पृष्ठ 7–8
8. शंकर, रवि (2014), पूर्व संदर्भित, पृष्ठ 47
9. हिन्दुस्तान, मुजफ्फरपुर संस्करण, 25 नवम्बर, 2016, पृष्ठ 6
10. हिन्दुस्तान, मुजफ्फरपुर संस्करण, 14 अप्रैल, 2015, पृष्ठ 13
11. चंद्र, आलोक (2017), खेतों का हाल : उत्तर बिहार में बाढ़, तो दक्षिण बिहार में सूखा, दैनिक भास्कर, मुजफ्फरपुर संस्करण, 6 जुलाई, पृष्ठ 7